Original Paper

ISSN: 2321-1520

मोहन राकेश की नाट्यभाषा

किंजल एम. पुरबिया

पीएच.डी. शोधछात्र
गुजरात विश्वविद्यालय
७६००७१४५५०

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटककारों में मोहन राकेश का विशिष्ट स्थान है । हिन्दी नाटक के कथ्य और शिल्प के क्षेत्र में उन्होंने कई नए प्रयोग किए हैं । रंगमंच की दिशा में भी उन्होंने नए प्रयोग किए हैं जिनका उपयोग जनसंचार तथा इलेक्ट्रानिक माध्यमों द्वारा अब भी किया जा रहा है ।

मोहन राकेश ने अपने कृतित्त्व का आरंभ कहानियों से किया । 'इनसान के खंडहर', 'नये बादल', 'जानवर और जानवर', 'एक और जिन्दगी', 'फौलाद का आकाश' आदि कहानी संग्रह प्रकाश में आए । उनकी कहानियाँ संवेदनशील की होने के कारण वे 'नयी कहानी' के नाम से प्रचलित होने लगी । उनकी समस्त कहानियाँ सन् १९८४ में 'मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ' शीर्षक से प्रकाशित हुई । मोहन राकेश ने तीन उपन्यास लिखे - 'अँधेरे बन्द कमरे', 'न आनेवाला कल' और 'अन्तराल' । उनके दो निबन्ध-संग्रह भी हैं - 'परिवेश' तथा 'मोहन राकेशः साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि' । इसके अतिरिक्त मोहन राकेश का 'आखिरी चट्टान तक यात्रा' संस्मरण है तथा 'समय सारथी' उनकी जीवनी रचना है, जिसमें महापुरुषों की जीवनियों का संकलन है । उन्होंने डायरी भी लिखी थी, जिसमें उनके व्यक्तिगत जीवन की घटनाओं का विवरण है । राकेश के अनूदित ग्रन्थ भी प्रकाशित है जिनमें 'शाकुंतल', 'मृच्छकटिक', 'एक औरत का चेहरा' का समावेश किया जा सकता है ।

राकेश ने तीन पूर्ण नाटकों की रचना की, यथा-'आषाढ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस' और 'आधे-अधूरे' का समावेश होता है । 'पैर तले की जमीन' उनका अपूर्ण नाटक है, जिसे राकेश की मृत्यु के बाद नोट्स के आधार पर उनके मित्र कमलेश्वर ने पूर्ण किया । 'आषाढ का एक दिन' और 'लहरों के राजहंस', यह दोनों राकेश के पौराणिक नाटक हैं, जबकि 'आधे-अधूरे' आधुनिक समकालीन जीवन से अपनी कथावस्तु ग्रहण करता है।

नाटक एक ऐसी कला है जो अन्य कलाओं को अपने अस्तित्त्व का अंग बनाती है । नाटक का अंग बनी ये कलाएँ रंगमंच पर अपनी-अपनी भूमिकाएँ निभाती हैं । नाट्यभाषा में अभिव्यक्ति का कार्य केवल शब्दों द्वारा नहीं होता, दृश्य के साथ जुड़ने में ही नाट्यभाषा की सफलता है । अतः वही नाट्य-भाषा अभिव्यक्ति के स्तर पर पहुँचती है, जिसमें रंगमंचीय संभावनाओं का समावेश हो और जो सभी प्रकार के भाषा और भाषा से जुड़े माध्यमों की सहायता से अपने अनुभवों को दर्शकों के सामने व्यक्त कर पाने में समर्थ हो ।

हिन्दी नाट्य-भाषा के सम्बन्ध में पाँचवें दशक से पहले का युग जड़ता और अवरोध से भरपूर था । मंच से जुडकर लिखने वाला नाटककार मंच की भाषा की खोज करेगा । मंच से संबंध न रखनेवाला लेखक ऐसी भाषा

का उपयोग करेंगे जो साहित्यिक शोभा से युक्त हो किन्तु जिसमें रंगमंचीयता की कमी हो । पचास से पहले हिन्दी नाटक का दुर्भाग्य भी यही था कि उनमें रंगमंच के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया ।

किसी भी युग में नाटक की भाषा जहाँ अपनी परंपरा से पोषित होती है, वहीं अपने समय की अन्य साहित्यिक विधाओं की भाषा से भी प्रभावित होती है और उसका जुड़ाव अपने समय के रंगमंच से भी होगा है । सबसे पहले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने नाटक के लिए सृजनशील भाषा तैयार की । यह एक महत्त्वपूर्ण प्रयास था, क्योंकि उनके पास कोई पूर्व परंपरा मौजूद नहीं थी । किंतु इस भाषा का सामना हुआ पारसी रंगमंच के नाटकों की भाषा से । पारसी रंगमंच के नाटकों की भाषा में उर्दू, हिन्दी ब्रजभाषा और अवधी का मिला जुला रुप था ।

प्रसाद और उनके समकालीनों ने जिस भाषा का प्रयोग किया, उसकी प्रतिक्रिया में यथार्थवादी नाटककारों ने ऐसी भाषा का उपयोग किया जो कृत्रिम, गतिहीन और निर्जीव ही नहीं, बल्कि गाली-गलौज की भाषा थी, यथार्थवादी नाटककार मानते थे कि नाटक में बोलचाल की भाषा का प्रयोग होना चाहिए । इसी कोशिश में उन्होंने ऐसी भाषा का प्रयोग किया ।

स्वतंत्रता के बाद परिवेश और परिस्थितियाँ तेजी से बदलीं । औद्योगिकीकरण तथा नगरीकरण ने मनुष्य के जीवन को बदल दिया। औद्योगिक युग के यान्त्रिक जीवन की दौड़-भाग आदि से गुजरने वाला आदमी आत्मकेन्द्रित बन गया । ऐसे माहौल ने नाटककारों को कुछ नया करने की प्रेरणा दी । नये नाटककारों ने भाषा को जीवन की इन परिस्थितियों के समकक्ष रखकर उसमें नये अर्थ की तलाश की शब्दों के पुराने अर्थ उन्हें अपनी अनुभूति को व्यक्त करने में असमर्थ लगने लगे । मोहन राकेश के अनुसार-

'यदि शब्द को उतने ही संस्कार में ग्रहण किया जाए जितना कि उसे पहले से प्राप्त हैं तो आधुनिक रचनाकार के लिए दायित्वच्युत होने जैसी स्थिति होगी ।'(१)

आधुनिक यथार्थ और कथ्य को संप्रेषित करने के लिए मोहन राकेश ने नई नाट्य-भाषा की तलाश की । स्त्री-पुरुष के संबंधों के बदलते मानदण्ड, आधुनिक मानव का भीतरी संधर्ष, भीड़ के बीच अकेले होने की तीव्र अनुभूति, इच्छाओं की पूर्ति में निष्फलता इन सबको अभिव्यक्ति देने के लिए उन्होंने भाषा की शक्ति का प्रयोग किया ।

'आषाढ का एक दिन' और 'लहरों के राजहंस' की भाषा संस्कृतनिष्ठ है । फिर भी भावुकता से भरी और आधुनिक ध्वनि और लययुक्त, संयमित भाषा है ।

हिन्दी नाट्य-साहित्य के क्षेत्र में नाट्य-साहित्य की सारी विशिष्टताओं के उद्‌घाटन का उत्तरदायित्व मोहन राकेश ने लिया । उन्होंने सर्जनात्मक नाट्य-भाषा पर जो शोध-कार्य आरंभ किया उसमें नाटकीय शब्द और ध्वनि, शब्द और मौन, बिम्ब और प्रतीक, लय और स्वराघात आदि विषयों के अंतर्गत समेटा ।

मोहन राकेश ने विशेष रूप से नाटकीय शब्द को अपने शोध और प्रयोग का आधार बनाया । इस विषय पर अन्य किसी नाटककार ने इतना मौलिक चिंतन नहीं किया। वे भाषा के मौजूदा ढाँचे से संतुष्ट नहीं थे। भाषा के पुराने स्वरुप को वे बदल डालना चाहते थे । वे लिखते हैं ।

'बहुत कौशिश करने पर भी वह एक शब्द नहीं मिलता जो आदमी की पूरी तलाश के हर उत्तर को व्यक्त कर सके ।'(२)

मोहन राकेश ने अपने नाटकों में शब्दों के विविध अर्थ को उद्‌घाटित करने में सफलता प्राप्त की । 'आधे-अधूरे' की भाषा को इस संदर्भ में विशेष रूप से देखा जा सकता है । लेकिन अन्य नाटकों में भी शब्दों के इस गुण का अभाव नहीं । 'आधे-अधूरे' की भाषा में ऐसे अनेक शब्द हैं जैसे - 'कोई', 'कैसे', 'हवा', 'गर्द' आदि -

'बड़ी लड़कीः कौन आने वाला है

पुरुष एकः सिंघानिया । इसका बोस । वह नया शुरु हुआ है आजकल ।'(३)

(आधे-अधूरे)

'स्त्रीः खडे क्यों हो गए ।

पुरुषः क्यों में खड़ा नहीं हो सकता

स्त्री (हलका वफ्का लेकर तिरस्कार पूर्ण स्वर में)

हो तो सकते है, पर घर के अन्दर ही ।'(४)

'आषाढ का एक दिन' में भी कुछ शब्द विशेष अर्थ लेकर प्रस्तुत होते हैं जैसे मेघ, वर्षा, भीगना, अँधेरा, भावना, अतिथि, संपत्ति, भूमि आदि । 'लहरों के राजहंस' में 'अंधेरा', 'छाया', 'दर्पण', 'श्यामांग के शब्द', 'नन्द के शब्द' आदि का विशेष प्रभाव दिखाई देता है ।

मोहन राकेश शब्दों की आंतरिक लय में रहे अर्थ संप्रेषण को अधिक महत्त्व देते हैं । उनका मानना है कि -

'शब्द मूलतः ध्वनि तथा लय ध्वनि का धर्म होने से किसी भी तरह के शब्द प्रयोग की सार्थकता उसके लय नियोजन पर निर्भर करती है ।'(५) वस्तुतः लय ही शब्द का अर्थ निर्धारित करती है ।

नाटक की लय नाटककार की भाषा में लिखी जाती है। निर्देशक द्वारा उसे नाट्य-भाषा में ढाला जाता है और अभिनेता द्वारा उसे चरम तक पहुँचाया जाता है । मोहन राकेश अपने नाटकों में निर्देशक के लिए कम और अभिनेता के लिए ज्यादा स्पेस छोड़ते हैं । 'आधे-अधूरे' के इस उद्धरण में उपरोक्त विशेषताओं के साथ-साथ एक प्रकार की सहजता भी भाषा में दिखाई देती है ।

'बड़ी लड़कीः तो तू सोचता है कि ममा जो कुछ भी करती है यहाँ...

लड़काः मैं पूछता हूँ, क्यों करती हैं । किसके लिए करती हैं हैं ....

बड़ी लड़कीः मेरे लिए करती थी.... ।

लड़काः तू घर छोड़कर चली गई ।

बड़ी लड़कीः किन्नी के लिए करती है.... ।

लड़काः वह दिन-ब-दिन पहले से बदतमीज होती जा रही है ।

बड़ी लड़कीः और सबसे ज्यादा तेरे लिए करती हैं ।

लड़काः और में ही इस घर का सबसे ज्यादा नकारा हूँ । .....'(६)

मोहन राकेश भाषा में 'मौन' को बहुत अधिक महत्त्व देते हैं और यह मौन नाटकों में अधिक दिखता है ।

मोहन राकेश के अनुसार -

'शब्दों की यात्रा में बहुत बार बहुत कुछ अनकहे शब्दों द्वारा कहा जाता है । ये अनकहे शब्द बिम्ब के साथ यात्रा करते हुए बिना ध्वनियों के भी अपना अर्थ ध्वनित कर देते हैं ।'(७)

यह मौन अपने संप्रेषण में शब्दों और क्रियाओं से कम प्रभावशाली नहीं होता । 'आषाढ का एक दिन' नाटक में जब मल्लिका अपने वर्षा में भीग कर आने के अनुभव का बखान कर रही है तो अम्बिका उसकी बातों का कई बार जवाब नहीं देती या देती है तो बहुत थोड़े शब्दों में -

'मल्लिकाः क्या बात है माँ ।

अम्बिकाः देख रही हो मैं काम कर रही हूँ ।

मल्लिकाः काम तो तुम हर समय करती रहती है । परंतु हर समय इस तरह चुप नहीं रहती ।

(अम्बिका के पास आ बैठती है । अम्बिका चुपचाप धान फटकती रहती हैं । मल्लिका उसके हाथ से छाज लेती है) मैं तुम्हें काम नहीं करने दूँगी ।... मुझसे बात करो ।'(८)

यहाँ 'मौन' का प्रयोग 'नाराज़गी' दिखाने के लिए किया गया है । तटस्थता से ज्यादा उपेक्षा, तनाव, द्वंद आदि की अभिव्यक्ति मौन द्वारा की गई है ।

'मौन' अपने संप्रेषण में शब्दों और क्रियाओं से कम प्रभावी नहीं होता । इसमें संवाद बोलते-बोलते पात्र का बीच में रुक जाना या अधूरा संवाद छोड़ कर मौन रह जाना भी अनेक अर्थों को व्यक्त करने में सक्षम है ।

'वे नहीं आए, अलका । जो लौट कर आया है, वह व्यक्ति कोई दूसरा ही है .... ।'(९)

'अब भी रोती हो । उसके लिए । उस व्यक्ति के लिए जिसने....'(१०)

'बात को रहने दो ममा । नहीं चाहता, मेरे मुँह से कुछ ऐसा निकल जाए जिससे तुम....'(११)

गिरीश रस्तोगी के अनुसार-

'अक्सर कवि, नाटककार, निर्देशक, पाठक- दर्शक को सक्रिय सजाग करने के लिए मौन छोड़ता है । इस प्रक्रिया से पाठक - दर्शक में अपनी कल्पनाशीलता और सर्जनात्मकता गतिशील होती है । कवियों में अज्ञेय और नाटककारों में मोहन राकेश ने मौन का सार्थक प्रयोग किया ।'(१२)

मोहन राकेश के अनुसार ध्वनि ही वह मूल माध्यम है जिससे शब्द का आरंभ हुआ है । मोहन राकेश के अनुसार 'भाषा का विकास शब्द से शब्द जोड़ने की प्रक्रिया के अनुसार न होकर मानवमन के भाव-संकेतों को ध्वनि में परिणत करने की प्रक्रिया के अनुसार हुआ है ।'(१३)

मोहन राकेश ने नाट्य-भाषा में ध्वनि के महत्त्व को व्यक्त करने के लिए 'रात बीतने तक' तथा अन्य ध्वनि नाटकों की रचना की । न केवल ध्वनि नाटकों बल्कि मंच के नाटकों में भी ध्वनि तत्त्व का प्रयोग किया । 'आषाढ का एक दिन' में नाटक के आरम्भ में हल्के-हल्के मेघ-गर्जन और बारिश की आवाज और उसके बाद घोड़ों की टापों की आवाज नाटक में तनाव को दर्शाता है । द्वितीय अंक में घोड़ों की टापों का पास आता शब्द संघर्ष और तनाव के साथ-साथ उत्तेजना भी जगाता है । तीसरे अंक में बारीश और मेघ गर्जन की आवाज मल्लिका के जीवन के सूनेपन को और अधिक भयानक बनाते दिखाई देते हैं । 'लहरों के राजहंस' में नाटककार ने जिन ध्वनियों का उल्लेख किया है उनमें पानी में पत्थर फेंकने की ध्वनि, पंखों की फड़फडाहट, हंसों का आहत क्रंदन आदि ध्वनियाँ प्रमुख हैं, बौद्ध भिक्षुओं के स्वर नाटक में विशेष ध्वनि प्रभाव छोड़ते हैं ।

'आधे-अधूरे' में भी कुछ ध्वनियों का सफल प्रयोग किया गया है जैसे किटपिट, ओफ्फोह-ओफ्फोह, थू-थू-थू, ओह्-ओह्-ओह्, हुँ-हुँ-हुँ, वख्र-वख्र आदि । इन ध्वनियों द्वारा वितृष्णा, तनाव, आक्रोश, थकान उतारने का भाव, उदासीनता का भाव प्रकट किया गया है ।

मोहन राकेश की नाट्य-भाषा की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह रही कि वह साहित्यिक भाषा को नकारते हैं और अभिनय की भाषा को, जिसे वे 'हरकत की भाषा' कहते हैं उसे महत्त्व देते हैं । राकेश के नाटकों में शब्द क्रिया का काम करते हैं। वे क्रिया की भाषा का सर्जन करते हैं ।

आधुनिक हिंदी नाट्य-क्षेत्र में कुछ नाटककारों ने भाषा को क्रिया का सहयोगी बनाने की कोशिश तो जरूर की लेकिन इस दिशा में सफलता मोहन राकेश को ही मिली ।

शब्दों और ध्वनियों को महत्त्व देने के साथ-साथ मोहन राकेश बिम्ब को भी अस्वीकार नहीं करते । उनका मानना है कि रंगमंच में दृश्य की स्थिरता के बावजूद जो एक आंतरिक गति रहती है, वह शब्दों और ध्वनियों से

उत्पन्न होती है क्योंकि यहाँ जो 'देखा'जाता है, वह 'सुने' जा रहे का ही रूपांतर होता है यानि शब्दों का कार्य न केवल बिम्ब को जन्म देना हैं बल्कि उससे जुडे रहना भी हैं । 'आषाढ का एक दिन' में मल्लिका के ये शब्द एक सजीव बिम्ब प्रस्तुत करते हैं -

'आषाढ का पहला दिन और ऐसी वर्षा माँ ।... ऐसी धारासार वर्षा । दूर-दूर तक की उपत्यकाएँ भीग गयीं ।... गई थी कि दक्षिण से उड़कर आती बकुल पंक्तियों को देखूँगी, चारों ओर धुंआरे मेघ गिर आए थे ... फिर भी मैं घाटी की पगडंडी पर नीचे-नीचे उतरती चली गयी ।'[१४]

ये कुछ ऐसे बिम्ब हैं जिनकी सहायता से आषाढ के भीगे वातावरण को शब्दों द्वारा अभिव्यक्ति दी गयी है ।

मोहन राकेश की नाट्य-भाषा का अध्ययन दो दृष्टियों से किया जा सकता है। ऐतिहासिक नाटकों की भाषा और सामाजिक यथार्थवादी नाटकों की भाषा । 'आषाढ का एक दिन' और 'लहरों के राजहंस' ऐतिहासिक नाटक है । इन नाटकों में जिस भाषा का उपयोग हुआ है वह देखकर ऐसा लगता हैं कि इन नाटकों में नाटककार अपने पूर्ववर्ती नाटककारों की भाषा से प्रभावित थे । नाट्य-परिवेश की दृष्टि से यह भाषा प्रभावी रही और नाटक रंगमंच पर सफल भी हुआ । 'आषाढ का एक दिन' नाटक की भाषा में लेखक ने युगानुरुप शब्दों का प्रयोग किया है । जैसे उपत्यकाएँ, तल्प, प्रकोष्ठ, शर्करा, आस्तरण, भाजन, सामुद्रिक, दौहित्र, भागिनेय, अभिस्तुति, विचक्षणता, अग्निकाष्ठ, अंकुश, दुहिता, उपवेश-ग्रह, आत्मश्लाघा, क्रीत, स्थपति, परिसंस्कार, श्लक्ष्ण शिलाएँ, क्रीडा-शैल, उपार्जित, वारांगणाएँ, पंडा, धूलि आदि ।

'लहरों के राजहंस' की भाषा सहज है -

'वे अपने केशों की खोज में जा रहे हैं । जाकर तथागत से पूछना चाहते हैं कि उन्होंने केशों का क्या किया । और यदि कुछ नहीं किया, तो क्या उनके केश उन्हें लौटाए जा सकते हैं । उनकी पत्नी को उन केशों की आवश्यकता है ।'[१५]

दृश्यवध दोनों नाटकों में एक जैसा है । नाटक के अन्त में पात्रों के लंबे-लंबे संवाद नाट्य-प्रवाह में बाधक बने हैं लेकिन अपनी बात रखने के लिए ये जरुरी था । इस संदर्भ में 'आषाढ का एक दिन' का उदाहरण उल्लेखनीय है -

'...लोग सोचते हैं मैंने उस जीवन और वातावरण में रहकर बहुत कुछ लिखा है । परंतु मैं जानता हूँ कि मैंने वहाँ रहकर कुछ नहीं लिखा । जो कुछ लिखा है वह यहाँ के जीवन का ही संचय था । 'कुमार संभव' की पृष्ठभूमि यह हिमालय है और तपस्विनी उमा तुम हो । 'मेघदूत' के यक्ष की पीड़ा मेरी पीड़ा हैं और विरहविमर्दिता यक्षिणी तुम हो-यद्यपि मैंने स्वयं यहाँ होने और तुम्हें नगर में देखने की कल्पना की । 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में शकुन्तला के रुप में तुम्हीं मेरे सामने थी । मैंने जब-जब लिखने का प्रयत्न किया तुम्हारे और अपने जीवन के इतिहास फिर-फिर दोहराया । और जब उससे हटकर लिखना चाहा तो रचना प्राणवान नहीं हुई । 'रघुवंश' में अज का विलाप मेरी ही वेदना की अभिव्यक्ति है और... । चाहता था, तुम यह सब पढ़ पातीं, परंतु सूत्र कुछ इस रुप में टूटा था कि ....'[१६]

नेमिचन्द्र जैन राकेश के नाटक 'आषाढ का एक दिन' की इस दुर्बलता की ओर संकेत करते हुए कहते हैं ।

'चरमबिन्दु के इतने समीप पहुँचकर भाषण द्वारा स्थिति का उद्घाटन बहुत अच्छी नाटकीय युक्ति नहीं, विशेषकर जबकि बाकी नाटक में राकेश कार्य-व्यवहार के द्वारा ही सफलतापूर्वक उद्घाटन करते रहे हैं । पर तीसरे अंक की यह दुर्बलता शीघ्र ही नियन्त्रण में आ जाती है और द्वार खटखटाए जाने के बाद से नाटक बड़ी दुर्दम्य गति से और तीव्रता से चरम परिणति की ओर अनिवार्यतापूर्वक चलता जाता है ।'[१७]

'द्वन्द्व' मोहन राकेश के नाटकों का प्राण है । 'आषाढ का एक दिन' नाटक में मोहन राकेश ने एक कलाकार

के द्वंद्व को चित्रित किया है और यह भाषा के माध्यम से मंच पर अभिव्यक्ति पाता है । कालिदास, मल्लिका, अम्बिका आदि की भाषा उनके मन में उपजे संघर्ष को व्यक्त करती है -

'यहाँ से जाकर मैं अपनी भूमि से उखड़ जाऊँगा ... नयी भूमि सुखा भी तो सकती है । ... और उस जीवन की अपनी अपेक्षाएँ भी होगी... फिर भी कई-कई आशंकाएँ उठती हैं । मुझे हृदय में उत्साह का अनुभव नहीं होता ।'(१८)

'लहरों के राजहंस' की भाषा नन्द के द्वंद को उभारने में पूरी तरह सहायक रही है । नाटक के आरंभ से अंत तक भाषा की सही बुनावट के द्वारा मोहन राकेश ने पात्रों की संघर्षपूर्ण, द्वंदग्रस्त मनोदशा का चित्रण किया है । नन्द की स्थिति लहरों पर तैरते राजहंसों के समान डाँवाडोल है । अश्वघोष के 'सौंदरनन्द' काव्य के जिस श्लोक से नाटक का शीर्षक लिया गया है, उसमें नन्द के द्वन्द्वग्रस्त मन को बहुत सुंदर शब्दों द्वारा व्यक्त किया गया है -

'तं गौरवं बुद्धगतं चकर्ष भार्यानुरागः पुनराचकर्ष ।

सोडनिश्यतान्नापिययौ न तस्थौ तरंस्तरंगेष्विव राजहंसः ।।'

'बुद्ध का गौरव उसे अपनी और खींच रहा था, और सुंदरी का अनुराग अपनी ओर । इस दुविधा में उससे न जाते बन रहा था न रुकते, उसकी स्थिति लहरों पर डोलते हुए राजहंस की सी हो रही थी ।'(१९)

मोहन राकेश के नाटकों में भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं है बल्कि वह अन्य नाट्य तत्त्वों का साथ लेकर चलती है ।

परिवेश को प्रस्तुत करने के लिए प्रकोष्ठ, कुंभ, स्वस्ति-चिन्ह आदि 'आषाढ का एक दिन' नाटक के कालिदासकालीन परिवेश को उभारने में सहायक हुए हैं । 'लहरों के राजहंस' नाटक में राजसी परिवेश को जीवंत करने के लिए जिन सामग्री की जरूरत थी, उसका अभाव था । शायद इसीलिए आलोचकों ने इसे 'कठिन' नाटक की कोटि में रखा है । यही कारण है कि 'लहरों के राजहंस' का मंचन केवल हिंदी भाषा में, जबकि 'आषाढ का एक दिन' का मंचन हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला तथा कन्नड आदि भाषाओं में भी हुआ है ।

मोहन राकेश के नाटकों की भाषा सामान्य नहीं लगती बल्कि अपनी विशेषताओं के कारण विशिष्ट हो जाती है । उनके नाटकों में कहीं पर भी ऐसा नहीं लगता कि भाषा सीखी हुई है उसे गढ़ा गया हैं, बल्कि भाषा स्वयं पात्र, परिवेश और स्थिति में ढलती चली जाती है । मोहन राकेश के सामाजकि यथार्थवादी नाटकों में 'आधे-अधूरे', 'पैरों तले की जमीन', 'अण्डे के छिलके', अन्य एकांकी तथा 'शायद' और 'हः' बीज नाटक शामिल हैं । भाषा की दृष्टि से ये उनके भिन्न कोटि के नाटक हैं । उनकी बोलचाल भाषा में स्वाभाविकता दिखाई देती है जिसके कारण वह हमें अपनी भाषा लगती है । यह उपलब्धि किसी भी नाटककार के लिए सहज नहीं है ।

'आधे-अधूरे' नाटक की सबसे बड़ी विशेषता है इसकी भाषा । इसकी भाषा में वह ताकत है जो वर्तमान समय के तनाव को पकड़ सके । 'आधे-अधूरे' नाटक में नाटककार ने हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी मिश्रीत भाषा द्वारा एक मध्यवर्ग के स्तर से निम्न मध्यवर्ग के स्तर तक आए परिवार की समस्याओं को व्यक्त किया है । अंग्रेजी शब्दों में ट्रे, मार्केट, बॉस, प्रैस, फेक्टरी, टैक्सी, फ्रिज, ममा, डैडी, अंकल, आंटी, सोफा, बैग, फिट, विलन, डायनिंग टेबल, शेव, रबड स्टैंप आदि कुल ८० शब्दों का प्रयोग हुआ है । साथ ही उर्दू, फारसी शब्दों का प्रयोग भी किया है । मोहन राकेश के अनुसार ।

'उनके इस दौर के नाटकों की भाषा में, अधिकतर उर्दू का प्रयोग है फिर उसमें मेरी लोक-भाषा, कुछ स्थानीय मुहावरे और कुछ अंग्रेजी भाषा के शब्द और अभिव्यक्तियाँ भी उसमें शामिल है ।'(२०)

ऐसा लगता है कि यह भाषा नित्य प्रयोग में लायी जानेवाली भाषा है । आज के युग में मध्य वर्ग के जीवन

में एक खालीपन, एक नीरसता घर कर गई है जिसका परिणाम है ऐसी जिंदगी जीने की विवशता जिसमें आस-पड़ोस तो दूर की बात है, एक परिवार के सदस्य भी आपस में एक-दूसरे को ताने दिए बिना, टीका-टिप्पणी किए बिना, एक दूसरे को फाड़ खाऐ बिना नहीं रह सकते । नाटक के संवादों में जिस भाषा का उपयोग किया गया है वह ऐसी है कि मानो सुनने वाले को पूरी तरह उघाड़ने में, उसका सारा कच्चा चिट्ठा खोलने में ही उसकी सार्थकता है ।

'स्त्रीः नहीं होने पाएँगे ग्यारह साल इसी तरह चलता रहा सबल कुछ तो ।'

पुरुष एकः (एकटक उसे देखता, काट के साथ) नहीं होने पाएँगे सचमुच । काफी अच्छा आदमी है जगमोहन । और फिर से दिल्ली में उसका ट्रांसफर भी हो गया है । मिला था उस दिन कनॉट पेलेस में । कह रहा था आएगा किसी दिन मिलने ।'(२१)

यहाँ महेन्द्रनाथ और सावित्री के इस संवाद में दोनों एक-दूसरे को चोट पहुँचाना चाहते हैं । हिन्दी रंगमंच पर 'आधे-अधूरे' ही कदाचित् एकमात्र ऐसा नाटक हैं जो सबसे ज्यादा खेला गया और पसंद किया गया । नाटक का दृश्यबंध आधुनिक है । और इसी के द्वारा नाटककार कथ्य को प्रतीक रूप में दर्शकों तक पहुँचाते हैं । तीन दरवाजों वाले कमरे में टूटे-फूटे सामान का, पुराने फर्नीचर का ढेर है । घर के सामान और दीवारों पर धूल मिट्टी की परतें जमी हैं । फटी पत्रिकाएँ, गंदे प्याले और प्लेटें । ये सब पात्रों के बिखरे जीवन का प्रतीक है ।

मोहन राकेश के भाषा संबंधी विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि राकेश के लिए भाषा केवल अभिव्यक्ति का साधन मात्र नहीं है, बल्कि स्वयं अनुभूति का अंग है । ऐसा लगता है कि मोहन राकेश भाषा को पैदा नहीं करते बल्कि उसकी खोज में प्रयत्नरत हैं । मोहन राकेश का संपूर्ण नाट्य-लेखन वस्तुतः एक सही नाट्य-भाषा को खोजने का उपक्रम रहा है ।

संदर्भसूची :

१. बकलम खुदः बदलता बलाघातः मोहन राकेश, पृ.११५
२. दिनमान-२५.३१ जनवरी, 'ठोक पीट अच्छी बात नहीं, लेख इब्राहिम अलकाजी', पृ.३३२
३. मोहन राकेश के संपूर्ण नाटक, पृ.२६६
४. मोहन राकेश के संपूर्ण नाटक, पृ.२५२
५. शब्द और ध्वनिः मोहन राकेश, पृ.११ नटरंग अंक २१, अक्तूबर-दिसम्बर-७२
६. आधे-अधूरे मोहन राकेश, पृ.५५
७. साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टिः मोहन राकेश, पृ.९२
८. मोहन राकेश के संपूर्ण नाटक, पृ.२९ सं. नेमिचन्द्र जैन
९. मोहन राकेश के संपूर्ण नाटक, सं. नेमिचन्द्र जैन, पृ.१९१
१०. वही, पृ.८५
११. वही, पृ.२८६
१२. रंगभाषाः गिरीश रस्तोगी, पृ.३३
१३. शब्द और ध्वनिः मोहन राकेश, पृ.१२, नटरंग अक्तूबर-दिसम्बर,७२
१४. मोहन राकेश के संपूर्ण नाटक, पृ.२८ सं. नेमिचन्द्र जैन
१५. वही, पृ.१९४

१६. वही, पृ.९७
१७. वही, पृ.८
१८. वही, पृ.५६
१९. वही, पृ.२२३
२०. साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि, मोहन राकेश, पृ.१६२
२१. आधे-अधूरे, मोहन राकेश, पृ.२८

❑